नाद-नर्तन
जर्नल ऑफ डांस एण्ड म्यूज़िक

UGC-CARE Listed ISSN: 2349-4654
वर्ष : 13, अंक : 1, जनवरी 2025

आधुनिक संस्थाकीय संगीत शिक्षा प्रणाली की नींव रखने वाली बड़ौदा संस्थान की गायन शाला का योगदान

डॉ. विश्वास संत
एसो. प्रोफेसर, परफार्मिंग आर्ट्स, इन्स्ट्रुमेंट्स डिपार्टमेंट (सितार वायलिन)
द महाराजा सायाजीराव यूनिवर्सिटी ऑफ बड़ौदा, वडोदरा

सार-संक्षेप

किसी भी राष्ट्र और समाज के विकास में उसकी विद्या-शाखाएँ तथा उनकी शिक्षा-व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। मध्यकालीन भारत में संगीत विधा की शिक्षा के लिए केवल घराना-परंपरा उपलब्ध माध्यम थी। कलाकारों की संकुचित मानसिकता, भेद-भाव, सीमित छात्रों को सीखने-सिखाने की मजबूरी, इत्यादि के कारण अत्याधिक लोग इस परंपरा में नहीं सिख पाते थे। परिणाम स्वरूप कालक्रम से समाज में संगीत लुप्तप्रायः होने की कगार तक जा पहुँचा था। उस समय कुछ क्रांतिकारी संगीतज्ञ भी रहे, जिन्होंने अपने भगीरथ कार्यों से संगीत एवं उसकी शिक्षा को तत्कालीन समाज में पुनः प्रतिष्ठित स्थान अर्जित करवाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। ऐसी विभूतियों में बड़ौदा संस्थान के कलावंत प्रोफेसर मौलाबक्ष का नाम अत्यंत आदर पूर्वक लिया जाता है, जिन्होंने बड़ौदा में एक गायनशाला की स्थापना की और ब्रिटिश शिक्षा-व्यवस्था की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए नए दिशा-निर्देशन के साथ संस्थाकिय संगीत शिक्षा प्रणाली की नींव रखी। सामूहिक शिक्षा, स्वरलिपि, पुस्तकें, अभ्यासक्रम, परीक्षा मूल्यांकन, उपाधि, महिला-शिक्षा इत्यादि माध्यमों से हमारी संगीत शिक्षा व्यवस्था को आधुनिक एवं वैज्ञानिक बनाने का प्रयास इस गायनशाला द्वारा किया गया। प्रारम्भिक स्तर पर कई विद्वानों द्वारा इसका विरोध भी किया गया, परंतु कालक्रम से उसकी उपयोगिता एवं प्रस्तुतता लोग मानने लगे। समाज में बहुत बड़े पैमाने पर लोग इसके माध्यम से हमारे अमूल्य संगीत कि शिक्षा लेने लगे और पुनः उसका प्रचार-प्रसार होने लगा।

मुख्य शब्द : संस्थाकीय संगीत शिक्षा प्रणाली, बड़ौदा, गायनशाला, मौलाबक्ष, हिन्दुस्तानी संगीत

शोध-पत्र

प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय संस्कृति में ललित कलाओं को धर्म और अध्यात्म के साथ संलग्न मानकर बड़ा गरिमा और आदरपूर्ण स्थान दिया गया था। परंतु पूर्व मध्यकाल में परिस्थिति में कुछ बदलाव आए। पहले जहाँ संगीत में व्यापक रूप में भक्तिरस निरूपित हुआ करता था, उसके स्थान पर श्रृंगारिकता अत्याधिक बढ़ने लगी। शहेनशाहों के दरबारों में या कोठें इत्यादि स्थानों पर जो संगीत परोसा जाता था, उसका स्तर अत्यंत गिरा हुआ था। अतः संगीत को पवित्र मानने का कोई वातावरण ही नहीं रह गया। समाज के सभ्य, संस्कारी वर्ग ने उसे अयोग्य, अनुचित मानकर उसका बहिष्कार करने लगे।

तत्कालीन संगीत शिक्षा का तरीका उस तरह का था, कि वह वैयक्तिक रूप से ही संभव था। सामूहिक रूप से संगीत शिक्षा के लिए कोई विकल्प उपलब्ध नहीं था। अतः उस काल में घरानेदार गुरुओं मर्यादित संख्या में अपने परिवारजनों को और गिने-चुने पसंदीदा शिष्यों को ही सीखाते थे। आम लोगों के घरों में संगीत का कोई वातावरण न था और न ही तो कोई करीबी उनका गुरु। इस परिस्थिति में सामान्य संगीत जिज्ञासु को संगीत सीखना दुर्लभ ही था। सभ्य समाज में संगीत मृतप्राय होने के कगार पर गतिमान होता जा रहा था।

इस परिस्थिति में बदलाव लाने के लिए उत्तर मध्यकाल में संगीत के पुनरुत्थान के लिए कुछ विभूतिओं ने क्रांतिकारी कार्य किए, जिनमें बड़ौदा के महाराजा सर सायजीराव गायकवाड तृतीय के दरबारी संगीतज्ञ संगीत रत्न प्रोफेसर मौलाबक्ष का नाम प्रथम पंक्ति में लिया जाता है।

गायनशाला की स्थापना

उस्ताद मौलाबक्ष स्वयं उत्तर हिन्दुस्तानी, दक्षिण हिन्दुस्तानी तथा पाश्चात्य संगीत पद्धतियों की गायन तथा वादन विद्या के उच्च कोटि के कलाकार थे और आधुनिक और प्रगतिशील विचारधारा के व्यक्ति थे। वे ब्रिटीश की सामूहिक शिक्षा प्रणाली से काफी प्रभावित हुए थे और भारतीय संगीत के क्षेत्र में परंपरागत, रुढ़िवादी एवं घरानेदारों की संकुचित सोच से परे कुछ अलग शिक्षा-व्यवस्था का निर्माण करना चाहते थे। संगीत के प्रति समाज में अप्रतिष्ठा की भावना, संगीतकारों की होनेवाली अवहेलना तथा संगीत प्रेमी और संगीत-शिक्षा पाने के इच्छुक विद्याथियों को संगीत सीखने में होनेवाली असुविधा या दुर्लभता

इन सभी बातों ने मौलाबक्ष को संगीत-शिक्षा की संस्था खोलने के दिशा में प्रेरित किया।

मौलाबक्ष का मानना था कि बच्चों को प्रारंभ से ही शालाकीय शिक्षा के साथ-साथ संगीत के संस्कार देना आवश्यक है। इसका मतलब यह भी नहीं है कि सभी संगीतज्ञ बन जाएँगें। किन्तु संगीत का प्रभाव मानव के चरित्र, हावभाव, बातचीत करने के तरीके इत्यादि के सुधार में सहायक की भूमिका अदा करता है। अन्य सामान्य स्कूली शिक्षा के साथ-साथ संगीत की शिक्षा एवं उसके जिर्णोद्धार की मौलाबक्ष की परिकल्पना से बड़ौदा नरेश भी बहुत प्रभावित हुए।

काफी अभ्यास एवम् अनुसंधान के पश्चात उस्ताद मौलाबक्ष ने महाराजा सर सयाजीराव गायकवाड़ तृतीय के सहयोग से बड़ौदा में 1 फरवरी, 1886 के दिन 'छोकराओ नी गायन-शाला' यानी कि 'बालक गायन-शाला' नामक सार्वजनिक संगीत विद्यालय की स्थापना की। (Pandya 136-137)

उल्लेखनीय है, कि कालांतर से बड़ौदा के उपरांत डभोई, पाटण, नवसारी, अमरेली और महेसाणा में भी संगीतशालाएँ खोली गई थी। (Bakhle 45-46)

गायनशाला की विशेषता

मौलाबक्ष द्वारा संस्थापित इस गायन-शाला के मुख्य तीन उद्देश्य थे–

1. एक आभूषण के रूप संगीत का ज्ञान देना।
2. लोगों में संगीत के प्रति अभिरुचि पैदा करना।
3. संगीत एवं संगीत शास्त्रों के पुनर्जीवन के लिए प्रयास करना। (खान, मौलाबक्ष घिसे 1-2)

बालकों में संगीत के संस्कार उजागर करने हेतु 5वीं कक्षा तथा उससे ऊँचे स्तर के वयस्क बालकों को गायनशाला में प्रवेश दिया जाता था। बच्चों की स्कूली शिक्षा में किसी भी प्रकार की अड़चन उपस्थित न हो इसीलिए गायन शाला का समय शाम को 6 से 8 बजे तक का रखा गया। विद्यार्थियों में संगीत के प्रति आकर्षण बढ़ाने हेतु संगीत शिक्षा मुफ्त में दी जाती थी। (Pandya 137) ऐसी कई विशेषता थी, जो गायनशाला को अपने आप में एक अनूठी संस्था सिद्ध करती थी–

सार्वजनिक एवं सामूहिक रूप से शिक्षा

गायनशाला में किसी भी धर्म, वर्ग, जाति के भेदभाव के बिना सभी विद्यार्थी के लिए समानरूप से संगीत-शिक्षा उपलब्ध थी। सभी विद्यार्थी एक साथ बैठकर सामूहिक रूप से शिक्षा ग्रहण करते थे।

स्थानिक भाषा का प्रयोग

बालकों को संगीत सिखने एवं समझने में आसानी हो, इसीलिए बड़ौदा में बोली जाने वाली गुजराती, मराठी, हिन्दी इत्यादि देशी भाषाओं में संगीत सीखाया जाता था।

आधुनिक और वैज्ञानिक तरीका

यहाँ सामूहिक रूप से वर्ग-खंड में शिक्षा होती थी जहाँ ब्लेक बॉर्ड जैसी घरानेदार प्रणाली से भिन्न व्यवस्था भी थी। यहाँ एक निश्चित अभ्यासक्रम तय किया जाता था, जिसके पूर्ण होने पर मूल्यांकन के रूप में छात्रों की क्रियात्मक एवं शास्त्र आधारित लिखित परीक्षाएँ भी आयोजित की जाती थीं। डिग्री भी दी जाती थी। प्रगति करने वाले छात्रों को प्रसंगानुरूप विशेष छात्रवृत्ति देकर सीखने के प्रति प्रेरित किया जाता था।

सराहनीय बात यह थी कि इस विद्यालय में शिक्षक अत्यंत उमदा दर्जे के थे। महाराजा सयाजीराव के दरबार के उच्च कोटि के घरानेदार कलाकारों को आश्रय दिया गया था। गायनशाला में मौलाबक्ष के मार्गदर्शन में कलावन्त खाते में नियुक्त घरानेदार कलाकारों द्वारा योजनाबद्ध, तर्कपूर्ण एवं वैज्ञानिक रूप से संगीत शिक्षा दी जाती थी, जिससे विद्यार्थियों को दुगुना लाभ प्राप्त होता था। ज्ञान उन्हें घरानेदार कक्षा का मिलता था, लेकिन तरीका विद्यालयीन होने से सीखने में सुगमता रहती थी।

वाद्यों का विशेष शिक्षण

19वीं शताब्दी की शुरूआत में कुछ कलाकारों द्वारा बंगाल तथा पश्चिम भारत में कई जगह संगीत विद्यालयों की स्थापना की गई, जैसे कि 'स्टूडेंट्स लिटररी एन्ड सायंटिफिक सोसायटी', 'गायन उत्तेजक मंडली', 'पूना गायन समाज', 'बंगाल स्कूल ऑफ म्यूजिक' इत्यादि। इन सभी में गायन शिक्षा को ही प्राधान्य दिया जाता था। गायन कला समाज में अत्याधिक प्रचलित थी। तकनीकी दृष्टि से देखें तो उसका शिक्षण भी प्रमाण में सरल था। विभिन्न प्रकार के संगीत वाद्यों को सिखाने की दृष्टि से समाज में अभी भी उदासीनता का माहौल दृष्टिगोचर हो रहा था। उस समय कई जगह गायक कलाकार ही वादन की भी शिक्षा देते थे, अथवा एक ही वादक द्वारा सभी वाद्यों की तालीम दी जाती थी।

प्रारंभ में गायनशाला में भी में गायन की ही शिक्षा दी जाती थी। सन् 1888 से मौलाबक्ष ने वाद्य-विभाग भी शुरू किया जिसमें सितार, फिडेल, हारमोनियम, जलतरंग तथा तबला जैसे वाद्यों का प्रशिक्षण दिया जाने लगा। अन्य तत्कालीन विद्यालयों से विपरीत इस विद्यालय में तकनीकी पक्ष को समझते हुए इन सभी वाद्यों के निष्णांत वादको को ही शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था। सन् 1905 से विविध वाद्यों में प्रवीणता हासिल करने वाले छात्रों को भी गायन विषय की भाँति डिप्लोमा कि उपाधि एवं प्रमाणपत्र से पुरस्कृत किया जाने लगा। (Bakhle 44)

सन् 1908 से गायनशाला में भारतीय वाद्यों के साथ पाश्चात्य वाद्यों के प्रशिक्षण के लिए भी अलग वर्ग शुरू किये गए। पियानो, पिकोलो, यूफोनियम, कोरोनेट, टेनोर ट्रोम्बोन एवं बेरीटॉन सिगिंग इत्यादि पाश्चात्य वाद्यों का प्रशिक्षण देना इस गायनशाला की अनोखी खूबी थी। केवल एकल गायन व वादन पर ध्यान केंद्रित न करते हुए गायन के साथ वाद्यों की संगत किस तरह की जाए इसकी प्रायोगिक शिक्षा भी नियमित रूप से छात्रों को दी जाती थी। (Bakhle 44)

मौलाबक्ष से प्रेरणा पाकर कालांतर में कई संगीत विद्यालयों की स्थापना की गई जिसमें गायन के साथ-साथ वादन शिक्षा को भी महत्त्व दिया गया। वादन कला में उत्कृष्ट व आधुनिक कला प्रशिक्षण की नींव रखने वाले मौलाबक्ष देश के प्रथम कलाकार थे ऐसा मानना अनुचित नहीं होगा।

कर्नाटकी और पाश्चात्य संगीत का समावेशन

उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत के साथ साथ दक्षिण हिन्दुस्तानी तथा पाश्चात्य संगीत की शिक्षा भी यहाँ दी जाती थी। विद्यार्थी को संगीत के विभिन्न स्वरूपों की शिक्षा एवं ज्ञान प्राप्त हो, यह उद्देश्य अपने आप में विशिष्ट एवं दीर्घद्रष्टा था।

नारी संगीत-शिक्षा

19वीं शताब्दी में यह स्थिती थी कि सभ्य परिवार की लड़कियों के बारे में संगीत सीखने की बात सोची भी नहीं जा सकती थी। मौलाबक्ष को लगा कि समाज में यदि संगीत को पुनः जीवन प्रदान करके आदर-सम्मान प्राप्त करवाना है तो पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों को भी संगीत का ज्ञान देना होगा। पर वे भलीभाँति जानते थे कि बड़ौदा में कन्याओं को संगीत के प्रति आकर्षित करना एक दुष्कर कार्य है। कन्याओं को संगीत सिखाने की शुरूआत काफी संभल के करने की ज़रूरत थी। गायनशाला में लड़कों के साथ क्या कन्याएँ शिक्षा ले सकेगी? क्या एक मुस्लीम उस्ताद के पास लोग अपनी लड़कीयों को संगीत सीखने भेजेंगे? इस प्रकार के कई प्रश्न मौलाबक्ष की चिन्ता का कारण बने थे।

महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ तृतीय नारी शिक्षा के हिमायती थे। कन्याओं की कला संबंधी शिक्षा में भी महाराजा की रुचि इतनी अधिक थी कि उन्होंने मौलाबक्ष को कन्याओं के लिए भी संगीत शिक्षा की कक्षाएँ खोलने की अनुमती दी। गायनशाला में लड़कों के साथ लड़कियाँ सीखने न आए, ऐसी पूर्ण संभावना थी, जिसके निराकरण स्वरूप मौलाबक्ष ने सन् 1991 में बड़ौदा की गुजराती कन्याशाला नं. 1 और मराठी कन्याशाला नं. 1 में संगीत को एक विषय के रूप में समाविष्ट करवाया। तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति में इस परिकल्पना की संवेदनशीलता समझते हुए इन कक्षाओं का संचालन मौलाबक्ष खुद करते थे। (Bakhle 45) यहाँ संगीत को एक स्वैच्छिक विषय के रूप में रखा गया था, क्योंकि मौलाबक्ष का मानना था की कला की शिक्षा जबरदस्ती से नहीं दी जा सकती। (खान अल्लाउद्दीन मौलाबक्ष) गायन के उपरांत हारमोनियम, तबला, सितार और कुछ वर्षों के दिलरुबा वाद्य का भी प्रशिक्षण दिया जाने लगा। सन् 1892 में मौलाबक्ष ने कन्याओं के लिए तांजोर नृत्य के वर्ग भी शुरू किये।

स्त्रियों की रुचियों को ध्यान में रखते हुए उनके लिए खास सांगीतिक पुस्तकों की रचना करके भी मौलाबक्ष ने स्त्रियों को संगीत सीखने-समझने के प्रति आकर्षित किया। इन पुस्तकों में गरबा, भजन, दोहा, कन्याशाला में पढ़ाई जाने वाली कविता, इत्यादि को स्वरलिपिबद्ध करके आलेखित किया गया था।

जिस समाज में स्त्रियों के लिए संगीत सीखना दुर्लभ हो गया हो, उसी समाज की सांगीतिक संस्कृति, धार्मिकता एवं भाषा का आधार लेकर, कन्याओं की संगीत-शिक्षा के लिए अद्भुत प्रयास करना, इस तरह का गुजरात में शायद यह प्रथम प्रयत्न मौलाबक्ष द्वारा किया गया था। मौलाबक्ष ने स्त्री संगीत शिक्षा की दिशा में काफी ऐतिहासिक एवं महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

समूह-गायन

गायन शाला में छात्र-छात्राओं को समूह गायन की शिक्षा विशेष रूप से दी जाती थी। भारतीय एवं पाश्चात्य वाद्यों के सम्मिश्रण के साथ किस तरह समूह गायन किया जाए, यह बखूबी सिखाया जाता था।

उल्लेखनीय है कि सन् 1916, बड़ौदा में पं. भातखंडे जी की अध्यक्षता में आयोजित 'प्रथम अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन' के उद्घाटन के अवसर पर गायनशाला की छात्राओं द्वारा समूह गायन की प्रस्तुति की गई थी। (Bakhle 40)

स्वरलिपि

भारतीय संगीत को लिखकर सिखाने की क्रांतिकारी शुरूआत यहाँ हुई। मौलाबक्ष पाश्चात्य स्वरलिपि के ज्ञाता थे। उन्होंने काफी चिंतन-मनन के पश्चात भारतीय संगीत के लिए उपयुक्त स्वरलिपि का आविष्कार किया। उसके माध्यम से सिर्फ मौखिक रूप से संभव संगीत तालीम साथ-साथ लिखकर दी जाने लगी। इससे सीखने में और गुरु की अनुपस्थिति में अभ्यास करते समय भी काफी सरलता हो गई। जो परंपरा केवल मौखिक रूप से अगली पीढ़ी तक पहुँच सकती थी, उसे लिखित स्वरूप में कायम करना संभव हो गया।

उल्लेखनीय है, कि भारतीय संगीत में कालक्रम से भी अन्य स्वरलिपियाँ भी बनी, जिनमें से कुछ आज अधिक प्रचलित है, पर उनका आधार मौलाबक्ष की यह स्वरलिपि ही थी, ऐसा मानना अनुचित नहीं है।

अभ्यासलक्षी ग्रंथ-साहित्य

घरानेदार संगीत पद्धति में शिष्य को पूरी तरह से गुरु पर अवलंबित रहना पड़ता था। पाठ्य पुस्तक आधारित संगीत शिक्षा व्यवस्था न होने से शिष्यों को स्वतंत्र अभ्यास करने में कई कठिनाईयों का सामना करना पड़ता था। सामूहिक शिक्षा पद्धतिनुसार शिक्षा देनेवाली इस गायनशाला में घरानेदार शिक्षा पद्धति के अनुसार शिक्षा देना सरल नहीं था। भारतीय संगीत में रुचि रखने वाले आम लोग, जिनको भारतीय राग संगीत का विशेष ज्ञान नहीं है, उन्हें पाठ्य पुस्तकों के माध्यम से संगीत शिक्षा देना सरल हो सकता है, ऐसा मौलाबक्ष को प्रतीत हुआ।

मातृभाषाओं में पाठ्य पुस्तकों का निर्माण करना मौलाबक्ष ने उचित समझा। पाठ्य पुस्तकों द्वारा संगीत शिक्षा देने का मौलाबक्ष का यह प्रयोग भी बहुत सफल हुआ। गायनशाला में प्रकाशित ग्रंथों में गुजरात के मध्यकालीन लोकप्रिय ऐसे भक्तकवि संत नरसिंह महेता, कवि प्रेमानंद,

कबीर, नानक, दादू, सुंदर, दास, मीराबाई, शंकराचार्य आदि तथा मौलाबक्ष के समकालीन कवि हरि हर्षद ध्रुव, भोलानाथ दिवेटिया जैसे महानुभावों के काव्यों, आख्यानों, पदों, भजनों इत्यादि को भी आधार बनाकर मौलाबक्ष ने संगीत अभ्यालक्षी पुस्तकों का लेखन एवं प्रकाशन किया (शाह मुळजीभाई 37-38) मराठी गीत, गुजराती गरबा, उर्दू की गजलों के साथ-साथ अंग्रेजी गीत रचनाएँ, इत्यादि विविध भाषी रचनाओं को भी संगीत के पाठ्य पुस्तकों में सम्मिलित किया गया था। (Bakhle 43)

गायन शाला में प्रयुक्त होने वाले ग्रंथ इस प्रकार है :

1. संगीतानुभव प्रथम दर्शन- 1888- मौलाबक्ष।
2. सितार शिक्षक - 1888 - मौलाबक्ष।
3. ताल-पद्धति - 1888 - उस्मान खान।
4. संगीतानुसार छन्दोमन्जरी - 1892 - मौलाबक्ष।
5. नरसिंह महेतानुं मामेरू - 1893 - मौलाबक्ष।
6. बाला संगीत माला (मराठी) - 1991 - मौलाबक्ष।
7. बाला संगीत माला (गुजराती) - 1991 - मौलाबक्ष।
8. गायन शाला में चलाए जाने वाले गायन की चीजों का पुस्तक भाग-1 से भाग-6 - 1894 - मौलाबक्ष।
9. भगवंत गरबावली - 1894 - मौलाबक्ष।
10. गुजराती वांचनमाला की कविताओं की नोटेशनबुक-1894- मौलाबक्ष।
11. इनायत हार्मोनियम शिक्षक - 1903 - इनायत खान।
12. इनायत फिडल शिक्षक - 1903 - इनायत खान।
13. इनायत गीत रत्नावली - 1903 - इनायत खान।
14. गायनाचार्यमाला प्रथम पुस्तक मूलाधार - 1907 - मिनाप्पा व्यंकप्पा केल्वाडे।
15. सितार शिक्षक - 1914- सदाशिव गणेश बापट।

संगीत-शाला द्वारा 'स्वर प्रस्तार' नामक संगीत की छोटी पत्रिका भी प्रकाशित की जाती थी।

कालांतर से गायनशाला का परिवर्तित रूप

10 जुलाई 1896 में मौलाबक्ष के स्वर्गवास के पश्चात सन् 1994 तक उनके ज्येष्ठ पुत्र मुर्तजाखान पठान, कनिष्ठ पुत्र डॉ. अलाउद्दीन खान पठान एवं मौलाबक्ष के नाती इनायत खान ने इस संस्था के संचालन एवं संगीत शिक्षा के कार्य को बड़ी खूबी से निभाया। (शुक्ल, हरकान्त 34)

मौलाबक्ष के परिवार का विदेश की और प्रयाण होने के बाद भी 'कलावन्त कारखाने' में नियुक्त विभिन्न कलाकारों द्वारा इस वाद्य शिक्षा की परंपरा को अविरत प्रगतिशील रखने का कार्य किया गया। शहनाई, सारंगी, इसराज, दिलरुबा, ताऊस, पखावज जैसे दुर्लभ वाद्यों की भी शिक्षा व्यवस्था अस्तित्व में आयी।

देश के इतिहास में यह सर्वप्रथम ऐसी गायन शाला हैं, जो अपनी स्थापना से लेकर लगातार बिना किसी रुकावट के 138 सालों से बड़ौदा में निरंतर अपनी सांगीतिक सेवाएँ प्रदान कर रही है। इस दौरान उसके नामों में कई परिवर्तन होते रहे।

सन् 1936 से म्यूजिक कॉलेज के नाम से पहचानी जाने वाली इस गायनशाला को महाराजा के देहांत के पश्चात् महाराजा के सहयोगियों द्वारा सन् 1949 में स्थापित महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय के साथ संलग्न करके डिप्लोमा के साथ-साथ स्नातक कक्षा के अभ्यास क्रम भी इस संस्था में शुरू किये गए। 30 अप्रैल 1949, से इस संस्था को 'भारतीय संगीत महाविद्यालय' (दि कॉलेज ऑफ इंडियन म्यूजिक) के नाम से पहचाने जाने लगा। शुरू में इस महाविद्यालय में गायन तथा वादन दो प्रमुख विभाग थे। जून, 1950 से नृत्य और नाट्य विषय के विभाग भी शुरू किये गए। बाद में फाइन आर्टस संकाय के साथ संयुक्त रूप से जुड़ी इस संस्था को सन् 1953 से 'दि कॉलेज ऑफ इंडियन म्यूजिक, डान्स, एन्ड ड्रामेटिक्स' के नाम से पहचाना जाने लगा। उत्तरोत्तर प्रगती करने वाली यह सांगीतिक संस्था सन् 1984 से फाइन आर्ट्स संकाय से अलग होकर एक स्वतंत्र संकाय के रूप में स्थापित हुई, और तब से इसे 'फॅकल्टी ऑफ परफोर्मिंग आर्टस' के नाम से पहचाना जाने लगा। अब इस संस्था में गायन, वादन, नृत्य और नाट्य विषयों में डिप्लोमा, स्नातक, अनुस्नातक और पी. एच. डी स्तर की पढ़ाई भी की जाती है। (Mohmood khan 183) देश-विदेश से कई विद्यार्थी यहाँ संगीत सीखने आते हैं।

गायनशाला द्वारा प्रस्थापित संस्थाकीय संगीत शिक्षा प्रणाली के लाभ

गायनशाला विद्यालयीन संगीत शिक्षा से संगीत जगत को क्या लाभ हुए, उसे संक्षेप में निम्न प्रकार से समझने का प्रयास किया गया है–

1. समाज में संगीत और कलाकारों के प्रति आदर बढ़ा। संगीत के श्रोता एवं कलाकारों की संख्या में वृद्धि होने लगी।
2. स्त्री-पुरुष, बालक-बालिकाएँ सभी खुलकर संगीत सीखने लगे। संगीत शिक्षा आसान हुई।
3. विद्यालयीन संगीत शिक्षा में डिप्लोमा, डिग्री, पी.एच.डी, डि.लीट जैसी सर्वोच्च उपाधियाँ प्राप्त होने लगी, और अन्य विधाओं कि तरह संगीत को भी शिक्षा व्यवस्था में स्वतंत्र एवं सम्मानजनक स्थान प्राप्त हुआ।
4. कलाकारों को शिक्षक के पद के रूप में अधिक संख्या में आजिविका प्राप्त होने लगी।
5. संगीत विद्यालयों के माध्यम से राज्य, राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर संगीत गोष्ठियों का आयोजन होने लगा। संगीत विषय के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा, निष्कर्ष, आदान-प्रदान और आविष्कार होने लगे।
6. स्वरलिपि के प्रयोग से छात्रों को संगीत सीखने समझने में आसानी हुई। गुरु की अनुपस्थिति में भी राग की बंदिशे, तानें इत्यादि के अभ्यास में सहायता प्राप्त हुई।

7. घरानेदार एवं पारंपरिक बंदिशों के प्रलेखन के माध्यम से वर्तमान एवं भविष्य के लिए संगीत को सुरक्षित रखा जाने लगा।
8. विद्यार्थियों को विभिन्न घरानों के गुरु व उनकी शैलियाँ सीखने का सुवर्ण अवसर प्राप्त हुआ।

उपसंहार

मौलाबक्ष ने गायनशाला स्थापित करके समाज में संगीत और उसकी शिक्षा के प्रति आदर-सम्मान प्राप्त करवाने की भावना और संगीत के भविष्य को सुरक्षित रखने के उनके प्रयास सही अर्थों में पूजनीय थे। धर्मनिरपेक्ष मौलाबक्ष ने इस गायनशाला के माध्यम से किसी भी प्रकार के ऊँच-नीच, धर्म-जात, शिष्य-पुत्र इत्यादि भेदभाव से परे निःस्वार्थ अपनी सांगीतिक सेवाएँ प्रदान की थी। इस शताब्दी में जहाँ घरेलू परिवार के सामान्य लोग संगीत का निषेध कर चुके थे; गायनशाला के जरिए वे पुनः हमारी इस पारंपरिक कला की ओर आकर्षित हुए। कर्णाटकी संगीत एवं ब्रिटिश शिक्षा व्यवस्था पर आधारित उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत शिक्षा देनेवाली बड़ौदा की गायनशाला अपने आप में अनोखे प्रकार की संस्था थी। भारतीय संगीत में सामूहिक संस्थागत शिक्षण प्रणाली, जिसमें स्वरलिपि और पाठ्य पुस्तकों का प्रयोग हो, ऐसी सोच और उसके लिए ठोस प्रयत्न रखने वाले उस्ताद मौलाबक्ष प्रथम कलाकार थे। मौलाबक्ष से प्रेरणा लेकर कई विद्वानों ने इस दिशा में सराहनीय कार्य किया है। पं. वि.दि. पलुस्कर, पं.वि. ना. भातखंडे, पं. भास्कर बुवा बखले इत्यादि इसके श्रेष्ठतम उदाहरण है। मौलाबक्ष के कई शिष्यों द्वारा भी संगीत - विद्यालय खोले गये थे, जैसे कि 'दि बॉम्बे मौलाबक्ष म्युजिक स्कुल', 'मुंबई गायन वादन शाला', 'मुंबई-मौलाबक्ष गायनशाला', इत्यादि।

इस गायनशाला के फलस्वरूप वर्तमान समय में ऐसी कई सांगीतिक संस्थाएँ, कॉलेज, फेकल्टी या विभाग मौलाबक्ष के पदचिह्नों पर शिक्षण कार्य कर रहे हैं। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप ही आज सामान्य जन मानस को संगीत सीखना, समझना सरल हो चुका है। मौलाबक्ष के भगीरथ कार्यरूपी इस गायनशाला को संगीत की संस्थागत शिक्षा प्रथा की नींव रखने का श्रेय अवश्य ही दिया जा सकता है। यूँ कहना अनुचित नहीं होगा, कि भारतीय संगीत शिक्षा में आधुनिकीकरण के लिए जो सोच, प्रयास और कार्यदक्षता मौलाबक्ष की गायनशाला में दृष्टिगोचर होते हैं, वह वर्तमान समय में भी प्रायः दुर्लभ है।

संदर्भ

1. Pandya, T.R (1915), education in baroda.bombay. Publisher: T.R. Pandya (Verlag Nicht Ermittelbar, 1916),p.p. 136-137.
2. Bakhle J, (2005), Two Man and Music : Nationalism in the making of an Indian classical tradition, Oxford university press on demand, p. 45-46
3. खान, मौलाबक्ष घिसे, (1888), संगीतानुभव, प्रकाशक : श्रीमंत सरकार सयाजीराव महाराजा गायकवाड सेनाखासखेल समशेर बहादुर, बड़ौदा. पृ. 2।
4. Pandya, T.R (1915). education in baroda.bombay. Publisher: T. R. Pandya, p.p. 137.
5. Bakhle, J. (2005). Two men and music : Nationalism in the making of an Indian classical tradition, Oxford university press on demand, p. 44.
6. वही, पृ. 45।
7. वही, पृ. 40।
8. खान अल्लाउद्दीन मौलाबक्ष (1913), बाला संगीत माला - मराठी व गुजराती पुस्तक पहेलां, प्रकाशक : श्रीमंत सरकार सयाजीराव महाराजा गायकवाड सेनाखासखेल समशेर बहादुर, पृ. 1, 2
9. Bakhle J, (2005), Two Man and Music : Nationalism in the making of an Indian classical tradition, Oxford university press on demand, p. 44.
10. शाह मुळजीभाई, (1937) भारत ना संगीतकारों, भाग-प्रथम, प्रकाशक - राजेन्द्र ओम. शाह, अमदाबाद. पृष्ठ नं. 37-38।
11. Bakhle, J. (2005). Two men and music : Nationalism in the making of an Indian classical tradition, Oxford university press on demand. P. 43 I
12. शुक्ल, हरकान्त. (1978). गुजरातनुं संगीत अने संगीतकारों, माहिती खातु - गुजरात सरकार. पृ.34
13. Mahmood Khan, s.a.-m. (2001). a pearl in wine. (p.z.khan, Ed.) New Lebanon: omega. p.183.